
भीष्म व्रत


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
पु०सं० 2395
भारती पुस्तकालय

भीष्म व्रत



लेखक

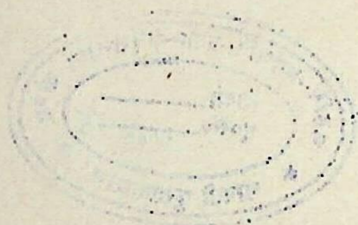
मूलजी मनुजः एम. ए.

प्रकाशक

शारदा मन्दिर

नई सड़क, दिल्ली

द्वितीयावृत्ति] १६५२ [मूल्य १।)



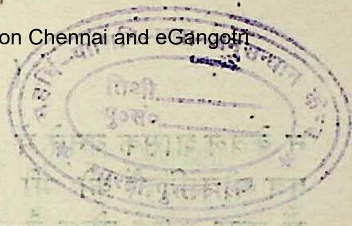
कैक्स्टन प्रेस, कनाट सरकस, नई दिल्ली

जिन्होंनें हम भ्रातृ युगल के लिए चिरकाल तक
विधुरावस्था का असीम कष्ट सहन किया,
जिन्होंने हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाने
के लिए हमारा लालन-पालन
और शिक्षा-दीक्षा अत्युतम
बनाने लिए अपना
सर्वस्व अर्पण
कर दिया
और



जिन पितृचरण **श्री तोलाराम जी मनुजः कुर्सीनशीन**
की
स्वर्गीय
आत्मा की
संतुष्टि के लिए उनके
निज व्यक्तित्व से ही प्रति-
बिम्बित प्राचीन भारतीय सभ्यता
का आदर्श यह अंकिचन तथा
विनीत उपहार—भीष्म—व्रत नाटक
उन्हें सादर और सप्रेम समर्पित ।

विनीत—
मूलजी मनुजः



प्रथम संस्करण पर

दो शब्द

दो वर्ष से "कल्याण कालिज" को सफलता-पूर्वक चलाते हुए जब मेरी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमवती मनुजा ने एक अच्छा पुस्तकालय चलाने का दृढ़ निश्चय कर लिया, उसके संग्रह का काम शुरू हो गया। साहित्य के अन्य अंगों के साथ नाटक संग्रह में स्वर्गीय श्रीयुत द्विजेन्द्रलाल राय का स्थान सर्वप्रथम आना ही था। आपकी प्रायः सारी कृतियां मंगवाई गईं। मैंने यद्यपि आपकी बहुत सी रचनाएं पहले पढ़ी हुई थीं तथापि आपके सारे नाटकों के पढ़ने का सौभाग्य मुझे चौक कष्ण नगर में कल्याण पुस्तक भंडार के खुलने पर ही मिला।

श्रीयुत राएजी के नाटकों के विषय में गुण दोष की आलोचना करना न तो मुझे अभिप्रेत है और न ही अपने पर 'छोटा मुँह बड़ी बात' की कहावत चरितार्थ कराने की आवश्यकता। आपके दो एक नाटकों में विशेषतया 'भीष्म' को पढ़ते हुए मुझे विस्मय हुआ कि नाटक कला में इतने लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति की लेखनी से ऐतिहासिक पुरुषों का चरित्र चित्रण यथातथ्य से सर्वथा विपरीत कैसे हो गया। जिन हिन्दी प्रेमियों ने 'भीष्म' को पढ़ा है वे यदि ज़रा गम्भीरता से विचारें कि जो धीवर दम्पती अपनी दूरदर्शिता से देवव्रत को

न केवल शासक बनने में बाधा डालता है, प्रत्युत उसके पुत्र पौत्रादिकों को भी उस अधिकार से वंचित करने में ऐसा समर्थ होता है कि देवव्रत को भीष्मव्रत लेना पड़ता है, वह धीवर दम्पति भला श्रीराए द्वारा चित्रित बौंगा* नहीं हो सकता। गंवारु या अशिक्षित व्यक्ति

---

*श्रीयुत राए के 'भीष्म' के पहले अंक के तीसरे दृश्य में धीवर दम्पति का चरित्र देखिए —

"धीवर—कोई ऐसा नहीं करता ? सुना रानी, मंत्री मना कर रहा है। नहीं तो मैं आज निश्चय जान दे देता।

धी०रानी—क्यों (मंत्री से) तुम क्यों मना करते हो ? तुम मना करने वाले कौन ? मैं रानी हूं—मैं हुक्म देती हूं। मेरे हुक्म को दुलखते हो ? जाओ मैं तुमको तुमारे काम से बरतरफ करती हूं।

धी०रानी—ओ जलंमुहे ! ओ अभागे ! इस मन्त्री के सामने अपना रोब दिखा रहा था। जान देने को धमका रहा था। मैं रानी हूं, मेरी बात को दुलखता है ? ओ रे धूर्त निगौड़े !!

धीवर—छी छी छी ! बेहूदा—बिल्कुल बेहूदा—रानी।

धी०रानी—निकल—निकल घर से नहीं तो ···

धीवर—नहीं तो क्या करोगी ?

धी०रानी—नहीं तो झाड़ू मारकर निकालूंगी।

धीवर—झाड़ू मार कर निकालोगी ?

धी०रानी—झाड़ू मार कर निकालूंगी।

धीवर—क्या झाड़ू मार कर निकालोगी ?

धी०रानी—हां हाँ, झाड़ू मारकर निकालूंगी।

धीवर—भला किसी ने सुना है कि किसी देश की रानी ने उस देश के राजा को झाड़ू मार कर निकाला है।

आदि।

होने से आवश्यक नहीं सभी ऐसे मनुष्य बेसमझ भी हों। जहां तक मैं समझता हूं श्री राए ने अपने नाटक में हास्यरस का पुट लाने के लिए गंवारु चौधरी के जीवन का यह पहलू दिखाने का प्रयत्न किया है।

दूसरा काशी नरेश की कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिका के चरित्र में श्री राए ने उनकी वृद्धावस्था तक को ज़रा भी निकट नहीं आने दिया। जब ये १५-१६ वर्ष की नवयुवास्था के विकास की उमंग में थीं, तब तो उनका काम केवल हंसना और गाना हो सकता है किन्तु जब उन्हें पौत्रवती होने से वृद्धावस्था की वेदना तथा पौत्रों के गृहकलह से व्यथित हो जाना चाहिए, फिर भी वे राए जी के कठपुतली *पात्र बन तितली

---

*'भीष्म' नाटक में पांचवां अंक, दूसरा दृश्य। स्थान—हस्तिनापुर के राजमहल का अन्तःपुर। (समय-संध्या काल)

(अम्बिका और अम्बालिका)

अम्बिका—अच्छा गाना है।
अम्बालिका—बहुत अच्छा है।
अम्बिका—अच्छा, अब हम गाना गाती किस हिसाब से हैं ?
अम्बा०—क्यों विधवा होनें से क्या गाना भी नहीं गाना चाहिए।
अम्बिका—लेकिन अब तो बूढ़ी हो गई हैं।
अम्बा०—कब से ?
अम्बिका—सो तो नहीं जानती, मगर बूढ़ी हो गई हैं।

की नांई चंचल निश्चिन्त तथा प्रसन्न बनी रहें—आश्चर्य ही है।

इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण जी जैसे गम्भीर व्यक्ति का युद्ध में विजय कैसे प्राप्त की जाय—ऐसी जीवन मरण की समस्या सुलझाने के समय आमोद-प्रमोद के साधन* वंशी बजाना कहाँ तक उपयुक्त है ?

अम्बा०—यह कैसे ? बूढ़ी हो गईं और मालूम न पड़ा। यह तो बड़ी ही भयानक अवस्था है।

अम्बिका—तेरे सब बाल पक गए हैं।

अम्बा—पक जाने दो। मन तो नहीं पका—वह तो वैसा बना है।"

थोड़ा आगे भी पढ़िये:—

"सत्यवती—सोचें क्यों ! कौरव पाण्डवों में महायुद्ध ठन गया है। तुम में से एक के पोते दूसरी के पोते से जान की बाज़ी लगा कर लड़ रहे हैं और तुम इसमें सोचने की कुछ बात ही नहीं पाती ?

अम्बिका—कहाँ ? नहीं तो ! अम्बालिका, तूने इसमें सोचने की बात पाई ?

अम्बा०—कहाँ ? कुछ समझ में तो नहीं आता।"

सत्यवती—तुम लोग अपने मन में अपने अपने पोतों को जीतने की कामना नहीं करती ?

अम्बिका और अम्बा०—कहां ? याद तो नहीं आता।"

*'भीष्म' पाँचवाँ अंक (तीसरा दृश्य)

(कृष्ण अकेले खड़े गा रहे हैं)

"युधिष्ठिर—मित्र ! अब यह बताओ कि उसका उपाय क्या है ? उपदेश दो कि क्या करना चाहिये।

इतिहास के विरुद्ध तथा कृत्रिमता के सांचे में ढले हुए 'भीष्म' को पढ़कर मन बड़ा क्षुब्ध हो उठा। महाभारत के अनुसार चरित्र चित्रण करने का प्रयास करता हुआ भी मैं श्रीयुत राएजी का आभारी हूं कि 'भीष्म-व्रत' के दृश्यों के क्रम संस्थापन में मुझें उनसे बड़ी सहायता मिली है। इतना कुछ करने पर भी मैं कह नहीं सकता कि मैं अपने उद्देश्य पर ठीक उतरा हूं या नहीं; क्योंकि यह अधिकार पाठकों का है।

कृष्णनगर, विनीत

लाहौर मूलजी मनुजः एम.ए.

कृष्ण—वही तो सोच रहा हूं। सहदेव! मेरी बाँसुरी ला दो।
युधि०—बाँसुरी क्या करोगे?
कृष्ण—वहुत दिनों से बजाई नहीं, ज़रा ले तो आओ।
युधि०—सो इस समय—
कृष्ण—ज़रा मन को स्थिर करने दो।
(कृष्ण वंशी लेकर बजाते हैं)
नकुल—आपने तो बांसुरी बजाना शुरू कर दिया।
सहदेव—इस मामले के साथ बांसुरी बजाने का तो कोई सम्बन्ध नहीं देख पड़ता।"

द्वितीय संस्करण

देश विभाजन से हम पुरुषार्थियों की जन, धन तथा मान की जो हानि हुई है, वह तो हम ही जानते हैं। "किस जानी पीर पराई ?" हम लोगों का जो अमूल्य साहित्य संग्रह पाकिस्तान में रह गया है, वह हानि हमें ही नहीं प्रत्युत सभी को न केवल असह्य ही है, अपरिमेय भी है। जल बिना नदी का, तेज बिना अग्नि का और शस्त्र बिना सेनानी का जिस प्रकार अस्तित्व ही मिट जाता है, ठीक इसी प्रकार पुस्तक बिना शिक्षक तथा विद्यार्थियों का जीवन ही निर्मूल्य हो जाता है।

"भीष्मव्रत" का प्रथम संस्करण लाहौर में किस सजधज से निकला था और पाठकों को कितना रुचि-कर हुआ, पाठक उसे स्वयं परख सकते हैं। इतना कह देना आत्मश्लाघा न होगी कि पंजाब शिक्षा विभाग के सम्पादक-प्रोफेसर परमानन्द जी एम. ए., एम. ओ. एल., शास्त्री ने उसे पंजाबी में अनूदित कर "भीष्म प्रतिज्ञा" नाम से हिन्दी लिपि में प्रकाशित कराने की अनुमति ले मुझे जो सम्मान दिया, वह उनकी अपनी गुणज्ञता

है । अब भी इसे द्वितीय संस्करण में लाने का श्रेय उन्हें ही है कि 'भीष्मप्रतिज्ञा' की अपनी एक मात्र प्रति मेरी प्रार्थना पर मुझे सौंप इसे दुबारा पाठकों के समक्ष रखने का अवसर दिया है ।

इस संस्करण में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि यह नाटक अपनी नाटकीय विभूतियों से सुसज्जित होकर भी स्कूल कालिजों के कोमल हृदय छात्रों के हाथोंमें पढ़ने तथा खेलने के लिए बिना किसी सँकोच दिया जा सके । इस सम्बन्ध में मुझे जो परामर्श मेरे सहयोगी आदरणीय आचार्य श्री कृष्णदत्त भारद्वाज एम. ए. शास्त्री से मिला, उसके लिए मैं उनका आभारी हूं ।

माडर्न स्कूल,
नई दिल्ली

मूलजी मनुजः

—— ——

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१ अर्जुन
२ काशी नरेश
३ कृपाचार्य
४ श्रीकृष्ण
५ चन्द्रमौलि–(गुरु व्यास के गुरुकुल का ब्रह्मचारी)
६ दुर्योधन
७ देवव्रत–(भीष्म)
८ द्रोणाचार्य
९ धीवर चौधरी
१० परशुराम
११ महादेव
१२ भीम
१३ सहदेव
१४ महामंत्री–(शान्तनु का प्रधानमंत्री)
१५ युधिष्ठिर
१६ राजकुमार
१७ व्यास

स्त्री-पात्र

१ अम्बा
२ अम्बालिका
३ सत्यवती
४ चम्पा (अम्बा की सखी)
५ लता (सत्यवती की सखी)

भीष्म व्रत

पहिला अङ्क

प्रथम दृश्य

(स्थान—व्यासजी के गुरुकल की वाटिका)

(समय—प्रातः आठ नौ बजे)

चन्द्रमौलि—देवव्रत जी ! क्या सचमुच आज गुरु जी आपको अन्तिम दीक्षा देंगे ?

देवव्रत—हां भ्राता जी, आज से इस मन्दभाग्य को आश्रम की इस स्वर्गीय भूमि को छोड़ नगर का नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।

चन्द्रमौलि—हमारे आश्रम रूपी गगन से आज यह (देवव्रत की ओर इङ्गित कर) सूर्य सर्वदा के लिए अस्त हो जाएगा न ?

देवव्रत—नहीं चन्द्रमौलि ! ऐसा कहना अत्युक्ति है। मैं और आप तो इस आश्रम की वाटिका में सायं-काल को चमचमाते जुगनू सदृश भी नहीं। मेरी उपमा सूर्य से दे मेरा उपहास न करो। मुझे चिंता

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१ अर्जुन
२ काशी नरेश
३ कृपाचार्य
४ श्रीकृष्ण
५ चन्द्रमौलि–(गुरु व्यास के गुरुकुल का ब्रह्मचारी)
६ दुर्योधन
७ देवव्रत–(भीष्म)
८ द्रोणाचार्य
९ धीवर चौधरी
१० परशुराम
११ महादेव
१२ भीम
१३ सहदेव
१४ महामंत्री–(शान्तनु का प्रधानमंत्री)
१५ युधिष्ठिर
१६ राजकुमार
१७ व्यास

स्त्री-पात्र

१ अम्बा
२ अम्बालिका
३ सत्यवती
४ चम्पा (अम्बा की सखी)
५ लता (सत्यवती की सखी)

भीष्म व्रत

पहिला अङ्क

प्रथम दृश्य

(स्थान—व्यासजी के गुरुकल की वाटिका)

(समय—प्रातः आठ नौ बजे)

चन्द्रमौलि—देवव्रत जी ! क्या सचमुच आज गुरु जी आपको अन्तिम दीक्षा देंगे ?

देवव्रत—हां भ्राता जी, आज से इस मन्दभाग्य को आश्रम की इस स्वर्गीय भूमि को छोड़ नगर का नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।

चन्द्रमौलि—हमारे आश्रम रूपी गगन से आज यह (देवव्रत की ओर इङ्गित कर) सूर्य सर्वदा के लिए अस्त हो जाएगा न ?

देवव्रत—नहीं चन्द्रमौलि ! ऐसा कहना अत्युक्ति है। मैं और आप तो इस आश्रम की वाटिका में सायं-काल को चमचमाते जुगुनू सदृश भी नहीं। मेरी उपमा सूर्य से दे मेरा उपहास न करो। मुझे चिंता

इस बात की है कि मैं गुरुजी की आज्ञा का पालन कैसे करूंगा ।

चन्द्रमौलि---भाई ! मैं तो यह समझता हूं कि ये सारी शिक्षाएं आश्रम की भित्ति के भीतर की हैं, न कि बाहर की । अन्यथा संसार में पापियों और दुष्टों का बीज न होता ।

देवव्रत---यह तुमने क्या कहा ? यह तो तुम्हारे नाम से सर्वथा विपरीत है । आप भगवान् चन्द्रमौलि महादेव जी को देखिए। एक ओर सब देवगण, सुन्दरी अप्सराएं, प्रकृति के मनोमोदकारी ऐंसे दृश्य कि ऋतुराज वसन्त के स्वागत के लिए कल-कण्ठ कोयलें कूज रही हैं और कामदेव अपने पुष्पवाण ताने बैठा है । दूसरी ओर एक मात्र तपस्वी महादेव । मेरा यह मन्तव्य है कि आदर्श पुरुष पापपुँज की घनघोर घटाओं को दलित कर दिनकर की नांई चमत्कृत होते हैं ।

चन्द्रमौलि---भाई ! जीवन में कई ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं कि मनुष्य भावुकता में कहीं से कहीं जा ठहरता है । उस समय गुरुजी की यह शिक्षा 'भावना से कर्त्तव्य ऊंचा है' कैसे स्मरण होती है ।

देवव्रत---भगवान् से मैं यही माँगता हूं कि भावी जीवन में गुरु जी की शिक्षा का अक्षरशः पालन कर सकूँ।

(घूमते-घूमते बातें करते हुए गुरु जी के पास आ जाते हैं और दण्डवत् करते हैं।)

व्यास---देवव्रत ! मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुमने केवल शस्त्रों और शास्त्रों में ही निपुणता नहीं प्राप्त की प्रत्युत आचार-विचार भी उच्च बनाये हैं। यही कारण है कि आज तुम्हें स्नातक की पदवी से परिपुष्ट किया जाता है। निस्संदेह अब तुम्हें समझाने योग्य कोई बात नहीं रही। यह तुम जानते हो कि अब तुमने राजकाज में व्यस्त होना है। इस लिए तेरे मस्तिष्क में यह पूर्ण रूप से घर करा देना है कि *रूप, यौवन, सम्पदा और अधिकार मनुष्य के बहुत बड़े शत्रु हैं। इनमें से एक भी मनुष्य को विनष्ट कर देता है, तेरे आगे ये चारों हाथ जोड़े हुए दासों की भांति मार्ग देखते रहेंगे।

देवव्रत---मेरे दयालु भगवन् ! इनको जीतने का उपाय भी बतलाने की कृपा करें।

---

* यौवनं धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

व्यास—मेरा अन्तिम उपदेश यही है कि **स्वार्थ त्याग और निष्काम-सेवा** दो ऐसे घोड़े हैं कि कर्तव्य के रथ को खींचने में समर्थ होते हैं। इस अश्व-युगल को वश में रखने वाला मनुष्य सफल सारथी है।

देवव्रत—(चरणों को स्पर्श कर) गुरु जी! मैं इन अमूल्य उपदेशों को मस्तिष्क में नहीं प्रत्युत हृदय में अङ्कित करूंगा। मुझे निश्चय है कि मेरे आचरण से आपकी आंख कभी नीचे नहीं होगी।

(पर्दा गिरता है)

द्वितीय दृश्य

(स्थान—नदी का किनारा। समय सायंकाल)

सत्यवती—महर्षि पराशर की कृपा का प्रसाद है कि 'मत्स्यगन्धा' से मैं 'पुष्पगन्धा' हो गई। (मन्द मुस्कान से) दूसरे वर 'अमर-जवानी' से अनन्त-काल तक यौवन सुख का भी आनन्द लूँगी।

(लता प्रविष्ट होती है)

लता—(अन्तिम वाक्य को पुनरुच्चारण कर) अवश्य, अवश्य। अनन्तकाल तक यौवन सुख लूटोगी। (किसी आगन्तुक की ओर संकेत कर) वह देखो (सत्यवती को छूकर) इस अलबेली सुन्दरी रूप सुगन्धित कली का रस पान करने को कोई अनुभवी भौंरा इस प्रकार आकृष्ट होता चला आता है जैसे चुम्बक से लोहा।

सत्यवती—(सस्मित) हत तेरी, बड़ी दुष्टा है तू। कोई कुमारियों के विषय में ऐसा कहता है ? (रूठ जाती है।)

लता——(ठोड़ी पकड़कर) ज़रा हृदय से पूछो, सत्या ! मैंने असंगत कहा है ? कलियों को भ्रमर नहीं चूसता तो कौन चूसता है ? (इतने में हस्तिनापुर के महाराज शान्तनु आते हैं। सत्यवती की मोहिनी मूर्ति को देख मस्त हो जाते हैं।)

शान्तनु——(काट कर) इसमें कुछ भी असत्य नहीं, सुन्दरी ! यह तो प्रकृति का अटल विधान है। अहह ! क्या स्वर्गीय सुन्दरता है ? क्या यह स्वप्न है ? इतनी असीम सुन्दरता ! यह बाला अवश्य गगन से उतरी होगी। प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने अपने हाथ से सुन्दरता का आदर्श बना इस स्त्रीरत्न को मर्त्यलोक में भेज दिया है। (सखी की ओर संकेत कर) इस सुन्दरी का क्या नाम है ? यह किस कुल की शोभा है ?

लता—(महाराज के मुखपर झुर्रियाँ और वायुवेल्लित धवल दाढ़ी को लक्ष्य कर चुटकी लेती हुई) बोलती क्यों नहीं मत्स्य-गन्धे ! आगे पीछे मानसिक रेखा द्वारा अपने प्रिय के नित्य नये चित्र बनाती हो। अब मौन क्यों हो ? ज़रा इधर देखो कितना सुन्दर और लचकीला देह है। मुख क्या पूर्णिमा का चन्द्र है। नयन तो विकसित कमलको लज़ाते हैं। श्वेतकाश

कुसुम को अप्रतिभ करती हुई यह लम्बी और सफ़ेद दाढ़ी पर, देखो, आंख नहीं ठहरती।

शान्तनु—(थोड़ी ढिठाई से) तुम बड़ी चतुर हो। तुमने इसे पुष्पगन्धा के स्थान पर मत्स्यगंधा क्यों कहा ?

लता—महाराज ! यह नाविकराज की कन्या मत्स्य-गन्धा ही है। ऋषि प्रसाद से पुष्पगन्धा और अमर यौवना बनी है। अब आप जैसे नवयुवक के संसर्ग...(चुटकी बजा भाग जाती है।)

शान्तनु—पुष्पगन्धा और अमर यौवना !! (संभलकर) तुम्हारे पिता धीवर चौधरी हैं ?

सत्य०—(लज्जित हो कर) हां महाराज ! हम नौका द्वारा यात्रियों को नदी पार पहुँचा देते हैं।

शान्तनु—सुन्दरी ! मुझे भी पार पहुंचा दो।

सत्या०—आइये, बैठिये।

शान्तनु—मैं इस काष्ठ की नौका से नदी पार होने क्यों जाऊंगा। मेरी जीवन नौका को उस पार ठेल चलो, बड़ा उपकार मानूँगा।

सत्य०—मैं आपका अभिप्राय नहीं समझी।

शान्तनु—(निकट हो कर) मेरा अभिप्राय यह है कि मैं आपकी पूजा करना चाहता हूं।

सत्य०—मेरी ? मैं कोई देवी नहीं हूं। मैं तो एक साधारण धीवर की कन्या हूं।

शान्तनु—नहीं तुम देवी ही हो।

सत्य०—कैसे ?

शान्तनु—तुम सुन्दरता की देवी हो। मैं इसलिए तुम्हारा उपासक होना चाहता हूं।

सत्य०—महाराज ! आपका वेष और चालढाल बतलाते हैं कि आप बड़े आदमी हैं। हम ग़रीब आदमियों के साथ हास्यविनोद आपको शोभा नहीं देता।

शान्तनु—(कुछ गम्भीर होकर) मैं उपहास नहीं करता, सुन्दरी ! न ही मैं नवयुवक हूं। चिरकाल से गृहस्थ सुख से वंचित हूं। राजभोग तक मुझे सुखी नहीं बना सकते। आज अकस्मात् तुम्हें देखने से मेरी भावना जागरित हो उठी है। मुझ पर दया कर मेरी जीवन की सहचरी बनना स्वीकार करो।

सत्य०—इस विषय में आप मेरे पिताजी से मिलें।

शान्तनु—तुम अपने पिताजी के दर्शन करा दो। (दोनों जाते हैं।)

(मार्ग में राजा का पिछड़ा हुआ मंत्री मिल जाता है। राजा उसको अपना और सत्यवती का उद्देश्य बतलाता है)

(पट परिवर्तन)

तृतीय दृश्य

(सत्यवती के पिता का घर। नदी के इस ओर चारपाई पर धीवर रानी बैठी है। पास ही धीवर तथा उसके आदमी खड़े हैं। सत्यवती भाग कर अन्दर चली जाती है)

महामंत्री—चौधरी जी ! (शान्तनु की ओर संकेत कर) आप हस्तिनापुर के स्वामी महाराज शान्तनु हैं। शिकार के पीछे इधर आ निकले हैं। आपकी सुन्दरी कन्या से विवाह करना चाहते हैं। धर्मात्मा तथा न्यायशील होने से आपकी सम्मति चाहते हैं। आपका क्या विचार है ?

चौधरी—(डरके) म...हा...रा...ज। हम आपकी प्रजा हैं। मेरे भाग्य से मेरी कन्या रानी बनेगी किन्तु महाराज. . .

शान्तनु—डरो नहीं चौधरी ! तुम्हारी क्या इच्छा है ?

चौधरी—महाराज ! मैं यही चाहता हूं कि आपके उपरान्त मेरा दौहित्र राजा बने।

शान्तनु—यह किस प्रकार हो सकता है ? मेरा पुत्र देवव्रत आज्ञाकारी, वीर तथा सब प्रकार से योग्य है। उसके साथ अन्याय होगा।

म.मंत्री—चौधरी जी ! अब आपका क्या विचार है ?

शान्तनु—और जो कुछ तुम मांगोगे, दूँगा।

चौधरी—महाराज ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

म.मंत्री—यह तुम्हारा अंतिम निश्चय है, चौधरी ?

चौधरी—महाराज ! क्षमा करें।

शान्तनु—(ठंडा सांस ले) अच्छा, चौधरी ! आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं आपकी कन्या से विवाह न करूंगा। कुमारी कन्या पर पिता का पूरा अधिकार होता है। (मंत्री की ओर) चलो मन्त्री जी ! चलें।

(दोनों चले जाते हैं)

————

चतुर्थ दृश्य

(स्थान—काशीराज के प्रासाद का उद्यान)

अम्बा टहल रही है। हाथ से गुलाब का फूल अपने गुलाबी गालों पर लगा रही है। उसके अंग-प्रत्यंग से युवावस्था प्रस्फुटित हो रही है। फूल चुनती हुई एक वृक्ष पर बैठी कोकिला की एक कूक सुनने लगी है।

अम्बा—(ठंडा सांस भर) आह ! वह फिर न आयेंगे ? उस वीरता और साहस के अवतार की मन्द मुस्कान पर बलिहारी जाऊं। शेर के पंजे से छुड़ाने वाली घटना तो सोते-जागते, उठते-बैठते, सदा मेरी आंखों के आगे घूमती रहती है। उनके मुखारविन्द से निकले हुए शब्द और वाक्य आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। मेरे सारे जीवन में ज्वार भाटा आया है। नयन उनकी प्रतीक्षा में पलक नहीं लेते। मैं जैसे भुलाना चाहती हूं, वह मेरे हृदय के अंदर पैठते जाते हैं।

(सशस्त्र देवव्रत का प्रवेश)

देवव्रत—ऐसी घटनाएं अनेकों होती रहती हैं, किन्तु काशिराज कुमारी ने एक ही दृष्टि से मुझे घायल कर दिया है। मैं यह विचारता था कि विवाह के जंजाल से न्यारा रहूं, पर उस दिन कामदेव ने पुष्पवाण छोड़ ही दिया। चलो, संभव हैं अपनी प्रिया के दर्शन से आज भी नेत्रतृप्ति हो जाए। (आगे जाकर राजकुमारी को देखता है और अन्तिम वाक्य भी सुन लेता है।)

देवव्रत—प्रिये ! यह तुम सर्वथा विपरीत कह रही हो। मुझे ही तुम्हारी स्मृति उस दिंन से स्वप्न में भी नहीं छोड़ती।

अम्बा—(नतग्रीवा होकर पैर के अंगूठे से पृथ्वी कुरेदती है।)

देवव्रत—'प्रिया' शब्द से कहीं आप रुष्ट तो नहीं हो गईं ? यह सम्बोधन प्रथम बार मेरे मुख से स्वतः निकल आया है, अतः इस धृष्टता के लिए क्षमा करना।

अम्बा—(लज्जित होंकर) उस दिन आपने मेरी रक्षा का व्यर्थ कष्ट किया। मुझे यदि यह ज्ञात होता कि जीवन रक्षा के व्याज से राजकुमार मेरा सर्वस्व ही लूट रहे हैं...

देवव्रत—(बीच में ही) तब अपनी कृपादृष्टि कृपण-धन की नाँईं छिपा देते।

अम्बा—जाइये, मैं आपसे नहीं बोलूँगी। चुपके चुपके मेरा सब कुछ छीन अब बातें बनाने आए हैं। पुरुष बड़े चतुर होते हैं।

देवव्रत—प्रिये! सबको एक ही रज्जु से न बाँधो। मुझे बड़ा आश्चर्य है कि मेरे प्राण उस दिन से इस देह को छोड़ कैसे नहीं गए। जब तक आपके दर्शन न करूं, मन प्रसन्न नहीं होता। (सेना का बिगुल सुन) अच्छा, प्रिये! अब आज्ञा दो। यह बिगुल मुझे बुला रहा है। सारी सेना मेरी प्रतीक्षा कर रही है।

अम्बा—अभी से चले जायेंगे? (नेत्रों को सजल कर) इन बातों में आपका सत्कार दूर रहा, बैठने को आसन भी न दे सकी कि कूच करने को प्रस्तुत हो गए।

देवव्रत—आपसे प्रेम भीख मिलनी आशातीत समझ मैंने आपको भुलाने के हेतु यह दिग्विजय का प्रपञ्च रचा है। अब जाना आवश्यक है। लौट कर अपने जीवन धन को अपनाने का प्रयत्न करूंगा।

(चला जाता है।)

अम्बा—छोड़ गए निर्मोही! कोई बात भी न कर सकी (माता का आह्वान सुन) आई माता जी!

(प्रस्थान)

———

पंचम दृश्य

(स्थान—हस्तिनापुर में महामंत्री का प्रासाद)

देवव्रत—महामन्त्री जी ! आप मुझे पितृतुल्य पूजनीय हैं। पिताजी अपने वैयक्तिक मामलों में भी आपकी मन्त्रणा लेते हैं।

महामंत्री—महाराज की असीम कृपा है और आपकी भी गुणज्ञता है, युवराज ! मैं आपकी क्या सेवा करूं ? आपको क्या चिंता है ?

देवव्रत—आज इसी लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। महामन्त्रिन् ! जब मैंने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया था, तो पिताजी बड़े प्रसन्न थे। अब पहिचाने भी नहीं जाते। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्षों से रुग्ण हों। तीन मास में इतना परिवर्तन ? मेरा विचार है कि उनको कोई मानसिक रोग है, शारीरिक नहीं। कृपया

बताएं क्या कारण है ? उनका यह कष्ट मुझसे सहन नहीं हो सकता ।

म०मंत्री—क्यों नहीं, आप जैसे पितृभक्त सुपुत्रों से यही आशा की जाती है। महाराज आपसे अगाध प्रेम करते हैं । अत: आपके वियोग में उनकी ऐसी दशा हो गई है ।

देवव्रत—क्षमा कीजिये, महामन्त्रिन् ! अब मैं ऐसा बालबुद्धि नहीं कि खिलौने से रीझ जाऊं। आपकी कृपा से शास्त्री के अध्ययन से कुछ-कुछ मनोविज्ञान का भी प्रसाद मिला है । यदि मेरे वियोग का ही यह प्रभाव होता तो मेरे मिलने की प्रसन्नता से यह कमी पूरी हो गई होती । मेरी प्रसन्नता से उन्हें अवश्य आह्लाद हुआ होगा किन्तु वह निर्जीव-सा है ।

म०मंत्री—पुत्र देवव्रत ! तुम्हारी पैनी दृष्टि ने निस्सन्देह धोखा नहीं खाया किन्तु मैंने भी जो कुछ कहा है, सत्य है कि महाराज की यह दशा आपसे अनन्य प्रेम के हेतु है ।

देवव्रत—आप मेरी कठिन परीक्षा न लें । आप नहीं जानते कि यह एक दिन भी मैंने कैसे बिताया है।

आप निश्चिन्त हो वास्तविक निदान बतलाने की कृपा करें।

म०मन्त्री—उसके बतलाने में मुझे न कुछ हिचक है न लाभ। हानि यह है कि आपको भी चिन्ता व्याप्त हो जायगी।

देवव्रत—महामन्त्रिन्! आप निश्चय रखें कि पिताजी को सुखी बनाने के लिए असम्भव को भी सम्भव कर दिखाऊंगा। आप एक बार कहिये तो सही।

म०मंत्री—युवराज! आपके कारण महाराज धीवर-कन्या से विवाह नहीं कर सकते किंतु उस कन्या की मूर्ति उनके हृदय पटल पर अंकित हो चुकी है।

देवव्रत—क्या पिताजी मुझसे डरते हैं?

म० मंत्री—नहीं युवराज! धीवर ने आपका राज्य अपने धेवते के लिए माँगा। महाराज यद्यपि बड़े खिन्न हुये किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार न किया।

देवव्रत—(उछल कर) बस? इतनी सी बात? इसका उपाय मेरे पास है। आप कृपया मुझे धीवर चौधरी के पास ले चलें।

(दोनों घोड़ों पर चढ़कर जाते हैं।)

षष्ठ दृश्य

(स्थान--नदी तट पर धीवर कुटीर)

(कुटीर के आगे महामन्त्री और देवव्रत खड़े हैं। धीवर रानी मंच पर बैठी है। पास ही धीवर तथा चार-पाँच अन्य व्यक्ति खड़े हैं। सत्यवती द्वार की आड़ में खड़ी देवव्रत को ध्यान से देख रही है।)

म०मंत्री—चौधरी जी (देवव्रत की ओर संकेत कर) आप हस्तिनापुर के महाराज शान्तनु के सुपुत्र युवराज देवव्रत हैं। आपके साथ कुछ बातचीत करना चाहते हैं।

धीवर—(हाथ जोड़कर) युवराज की जय। आज्ञा करो युवराज ! आपने यहां कैसे कष्ट किया ?

देवव्रत—मैं आपकी कन्या के लिए आया हूं।

धीवर—आपके साथ अपनी कन्या ब्याहने में मुझे कोई ननुनच नहीं क्योंकि आप तो महाराज के एक

मात्र पुत्र हैं। राज्य के अधिकारी भी हैं। आपके बाद मेरा नाती ही राज्य का स्वामी होगा।

देवव्रत—चौधरी जी ! मेरी बात सुने बिना ही आप इतना कुछ कह गये।

चौधरी—सत्यवती को फिर किस लिए माँग रहे हो ?

देवव्रत—मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी कन्या का विवाह मेरे पिताजी से कर दें।

चौधरी—आपके पिताजी ने मेरी प्रार्थना ठुकरा दी।

देवव्रत—चौधरी जी ! यदि मेरे पिताजी भी और राजाओं की भांति आपकी कन्या को हर ले जाते और उससे विवाह कर लेते, तो उस दशा में आपकी यह शर्त कैसे पूर्ण होती ?

चौधरी—क्षमा करो युवराज ! आप तो अपने पिताजी की कीर्ति में लांछन लगा रहे हैं। हम मूर्खों को भी यह विश्वास नहीं होता कि राजा शान्तनु वृद्धावस्था में ब्याह करते हुए भी अन्याय करेंगे।

देवव्रत—(सस्मित) शाबाश, चौधरी जी ! मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूं। अच्छा, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो।

चौधरी—आज्ञा करो। मैं अपनी बुद्धि अनुसार..,

देवव्रत—(बीच में ही) राजा अपने भोगविलास और अन्य सुखों को लात मार कर शत्रुओं से लोहा लेते हुए अपनी और अपनी संतति की बलि क्यों देता है ?

चौधरी—प्रजा के हित के लिए।

देवव्रत—ठीक। जब राजा प्रजा के सुख के लिए इतना कष्ट सहन करता है तो राजा के सुख के लिए प्रजा का कोई कर्तव्य नहीं ?

चौधरी—अवश्य, युवराज ! किन्तु उचित सुख के लिए।

देवव्रत—आपकी कन्या से विवाह करने में क्या बुराई है ?

चौधरी—युवराज जी ! हम ग्रामीणों की यद्यपि स्थूल बुद्धि है किन्तु इतना तो समझ पाते हैं कि महाराज इस वृद्धावस्था में एक सुन्दरी का सर्वस्व लूट अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वह भी कुछ बलिदान तो करें।

देवव्रत—यह ठीक है, चौधरी जी ! किन्तु तुम्हारी कन्या के बिना महाराज बड़े दुःखी हैं। उनकी दशा पर दया कर अपनी कन्या दे दो।

चौधरी—जिस प्रकार आपको अपने पिताजी प्रिय हैं, मुझे अपनी कन्या प्यारी है।

देवव्रत—(गुरुजी की शिक्षा—'भावना से कर्तव्य ऊँचा है' स्मरण कर) अच्छा, चौधरी जी ! मैं आपकी शर्त पूरी करता हूं। पिताजी के उपरान्त सिंहासन पर मेरे स्थान पर तुम्हारा नाती बैठेगा।

(यह सुन सभी चकित हो जाते हैं)

चौधरी—धन्य हो, युवराज ! धन्य हो। क्षमा करो, इस समय आपके पिता का शासन है। यदि वह न मानें तो आपके कहने का क्या लाभ ?

देवव्रत—चौधरी जी ! क्या मेरी प्रतिज्ञा पर आपको विश्वास नहीं ? मेरे पितृतुल्य राज्य के महामंत्री, आकाश के देवगण और तुम सब सुन रहे हो कि मैं सिंहासन पर नहीं बैठूंगा।

चौधरी—आप जैसे पितृभक्त पुत्रों पर मुझे पूर्ण निश्चय है कि आप प्रतिज्ञाबद्ध रहेंगे। सत्यवती के पिता होने से मुझे अपनी कन्या का हानि-लाभ सोचना है। हां, एक बात और है, जिससे मन नहीं मानता।

देवव्रत—(क्रुद्ध होकर) क्या आप अपने वचन से विमुख होते हैं ?

चौधरी—नहीं, युवराज ! मैं यह भलीभांति

जानता हूं कि मैं अपने देश के भावी राजा से बात कर रहा हूं। इसलिए ऐसी वैसी बात करने पर मेरे सिर का कल्याण नहीं।

देवव्रत—जब तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दी गई फिर मन क्यों नहीं मानता ?

चौधरी—इसी शर्त के एक अन्य अंग पर मुझे भय लगता है।

देवव्रत—वह कौन सा अंग है ?

चौधरी—युवराज जी ! मुझे निश्चय है कि आप सिंहासन पर नहीं बैठेंगे किन्तु आपकी संतान तो अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती है। उस समय आप जैसे धनुर्धारी का कौन सामना करेगा ? इस प्रकार गृहकलह का सारा चित्र मेरे सामने है।

देवव्रत—चौधरी ! तू वास्तव में बड़ा बुद्धिमान है॥ मुझे इस बात का आभास भी नहीं हुआ। [स्वगत] (सखा चन्द्रमौलि ने ठीक कहा था कि मानवीय जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ आजाती हैं, जब आश्रम की सारी शिक्षाएं व्यावहारिक काम काज से मेल नहीं खातीं। ऐसी विषमावस्था में गुरुजी ने कहा था कि आत्म त्याग और परोपकार आदर्श पूर्वक होते हैं। क्या कह दूं कि "मैं आजीवन विवाह ही न करूंगा।' पर (ठण्डा साँस भर कर) राजकुमारी

अम्बा को कैसे मनाऊंगा ! (दृढ़ता से) [प्रकाश में] चौधरी जी ! जिस बात से आप डरते हैं, वह बात न होगी । न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी ।

चौधरी--इसका क्या मतलब ? मैं समझा नहीं ।

देवव्रत---पिताजी के सुख के लिए मैं अपनी बलि देता हूं । मैं सारी आयु विवाह न कर ब्रह्मचारी रहूंगा । अब तो सँतुष्ट हो ?

चौधरी---धन्य हो युवराज ! आप सचमुच धन्य हैं । आपकी पितृभक्ति आदर्श है किन्तु सोच समझ लें कि यह खड्ग की धार पर चलना है ।

देवव्रत---चौधरी जी ! मुझे अच्छी तरह विदित है । अब तो चाहे सूर्य पश्चिम से उदित होने लगे, बर्फ़ आग उगलनें लगे, समुद्र चाहे सूख कर मरुभूमि बन जाए किंतु देवव्रत अपना निश्चय नहीं तोड़ेगा । अब तुम शीघ्र अपनी कन्या का विवाह मेरे पिताजी से कर दो ।

[आकाश से पुष्पवर्षा होती है]

(पटपरिवर्तन)

दूसरा अङ्क

प्रथम दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर का प्रासाद ।

(महाराज शान्तनु और देवव्रत बातों में व्यस्त हैं)

शान्तनु—पुत्र देवव्रत ! तुम सब प्रकार से योग्य हो। मुझे यह ज्ञान नहीं था कि तुम्हारी आत्मा इतनी उच्च और महान् है। बेटा ! तेरे जैसे पुत्र के पिता को क्यों अभिमान न हो ? तुम्हारी गणना मानवों में नहीं प्रत्युत देवों में भी मुख्यतम है। मेरा दर्जा पशुओं से अधिक नहीं।

देवव्रत—पिताजी ! मैंने किसी बल या भय से ऐसा नहीं किया। आपकी प्रसन्नता से मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। अतः आप इस विषय में कुछ न विचारें।

शान्तनु—देवव्रत ! अपने इस भीष्मव्रत के कारण विश्व में तुम 'भीष्म' नाम से विख्यात होवोगे।

मेरी प्रसन्नता के लिए तुमने अपनी बलि दी है। अतः मैं यह वर देता हूं कि तुम्हें अभीष्ट मृत्यु मिले।

देवव्रत---इस अनुग्रह के लिए धन्यवाद।

(प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

स्थान—काशी नरेश का वही उद्यान।

(अम्बा और चम्पा बैठी हैं)

चम्पा—अम्बा ! अब तुम किसकी स्मृति में घुल २ कर मरोगी।

अम्बा—चम्पा ! तुम से क्या दुराव है। तुम तो जानती हो कि हस्तिनापुर के युवराज ने एक बार मुझे शेर के पंजे से छुड़ाया था। उस दिन से मैं उन्मादिनी फिरती हूं। चार मास हुए हैं, वह मुझे इसी कुंज में देखने के लिये आये थे। उन की वह मूर्ति मेरे हृदय पटल पर अङ्कित है। दिग्विजय से लौट कर आने को कहा था। अभी तक आये नहीं।

चम्पा—एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगी ?

अम्बा--बुरा क्यों मानूँ ।

चम्पा--तुमने तो उन्हें अपना सर्वस्व सौंपा है किन्तु वह भी तुम पर रीझे हैं या नहीं ?

अम्बा--(नतमुखी हो) मैं तुम्हें क्या बताऊँ ? इतना तो तुम भी जानती हो कि प्रेमबाण दोनों ओर पड़ते हैं ।

चम्पा--मुझे सन्देह है कि राजकुमार तुमसे स्नेह करते हैं ।

अम्बा--नहीं, चम्पा ! यह विचारना ही व्यर्थ है ।

चम्पा--अम्बा ! तुम्हारा कष्ट मुझ से सहन नहीं होता । पुनरपि तुम अपनें रूप और गुणगायक की प्रतीक्षा करो । (पत्तों के मध्य मर-मर शब्द होता है । दोनों उसी ओर चौकन्नी होकर देखती हैं । चम्पा देखने को आगे जाती है । राजकुमार को आता देख, प्रसन्न हो दूसरी ओर चली जाती है ।)

भीष्म--अब क्या मुख लेकर जाऊं ? कैसे समझाऊं ? (सामने देखकर) हाय ! मेरे विरह में उसकी कैसी दशा हो गई है । अब भी मेरी ओर आँखें जोह रही है । स्पष्ट निषेध करने से पूर्व एक झांकी तो देख लूं । नहीं अब मेरा कोई अधिकार नहीं ।

मैं ब्रह्मचारी हूं। अरे मन ! विचलित क्यों होता है ? हे भगवान् ! मुझे बल दो। मैं इस खड्ग की धार को लांघ जाऊं (निकट जाकर) देवीजी !

अम्बा----(देखकर खड़ी हो जाती है) यह क्या, प्राणनाथ ! आपके मुख का तेज कहां उड़ गया ? मुझे प्रेम-दृष्टि से क्यों नहीं देखते ?

भीष्म—देवी ! (अश्रुपूर्ण हो) मैं अपराधी हूं। मैं आपसे क्षमा मांगने आया हूँ। चाहे......

अम्बा—(बात काट कर) कौनसा अपराध ? किससे क्षमा ? इतना दासी को भुला अब यह नई भूमिका बांधने लगे हैं ?

भीष्म—नहीं, देवीजी ! नहीं। भूल जाइये।

अम्बा—तुम्हें क्या हो गया है ? प्रीतम ! यह कैसी भूलभुलैयों की बातें कर रहे हैं आप ? भूल किसे जाऊं ?

भीष्म—मुझे। (अपनी ओर संकेत कर) इस पातकी को। इस विश्वासघाती को।

अम्बा—मैं समझ नहीं सकी। आप तो मेरे पूजनीय देव हैं। आपकी आराधना करती हुई इतना समय बिता सकी हूँ। अब मेरे पास और

क्या हूं ? जो कुछ था, चरणों में सौंप चुकी हूं ।

(भीष्म के अश्रु पूंछने समीप जाती है ।)

भीष्म—बस, देवी आगे न जाओ । भूतकालीन प्रेम-कथाओं को भूल जाओ । मुझे क्षमा करो ।

अम्बा—युवराज ! क्या विघ्न पड़ गया है अब ?

भीष्म—देवीजी ! इस निर्मोही युवक ने प्रेम की पवित्र नदी को मटियाला कर दिया है । जिसने आपके चरणों में विनम्र होकर प्रेम की भिक्षा माँगी थी, वह आज इस मन्दिर में प्रविष्ट होने को जी चुराता है । इस घातक ने अपने आदर्श पालन में अपनी पूजनीया देवी को ही भेंट में दे दिया । अब इस अपराधी ने गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट न होने की प्रतिज्ञा की है इसलिए मेरी प्रार्थना है कि मुझे भूल जाओ ।

अम्बा—मेरे प्रियतम ! क्या यह स्वप्न है या मेरा मस्तिष्क काम नहीं करता ? मेरे साथ विवाह न करोगे ?

भीष्म—नहीं बहिन ! मैं सदा के लिए वियुक्त होने आया हूं ।

अम्बा—यह कैसा वज्रपात हुआ ? मैं सुन क्या रही हूं ? युवराज ! तुम्हें उन्माद तो नहीं हो गया ?

भीष्म—नहीं, बहिन ! मेरी यही विनय है कि अपने भाई के व्रत को सफल बनाने में मुझे सहयोग दो ।

अम्बा—युवराज ! तुम में मुझमें यह व्यवधान कैसे पड़ा ?

भीष्म—पिता जी के सुख के लिए मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की शपथ उठाई है । अतः अब हमारा विवाह नहीं हो सकता ।

अम्बा—अरे ओ क्रूर ! ओ निर्दयी ! तुमने यह क्या किया ? यदि ऐसा करना था, मुझसे प्रेम की भिक्षा क्यों मांगी थी ?

भीष्म—क्षमा करो, देवी जी ! क्षमा । मैं अब भी प्रेम करता हूं और अपने से भी अधिक और वह निर्मल बहिन-भाई का प्रेम ।

अम्बा—(हिचकी लेकर) हाय, युवराज !

भीष्म—(दृढ़ता से) बहिन ! इस शस्त्र का प्रयोग न करो ।

महापुरुषों का कहना है कि जो काम एक धनुर्धारी के शस्त्रबल से नहीं होता, वह किसी महिला के एक अश्रु बिन्दु से सहज हो जाता है। अपने भाई को–मुझे–डावांडोल न करो। अच्छा, अब मैं जाता हूं।

अम्बा—ठहरो तो सही ! मेरी बातें तो सुनो।

(प्रस्थान, अम्बा मूर्छित हो जाती है।)

—— ——

तृतीय-दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर का अन्तःपुर ।

(विधवा सत्यवती और भीष्म वार्तालाप कर रहे हैं)

सत्य०—भीष्म ! महाराज के उपरान्त आपने अपनी प्रतिज्ञानुसार चित्रांगद को सिंहासन पर बैठाया । वह शाल्वराज की रक्षा करता हुआ वीरगति प्राप्त कर गया । विचित्र अभी छोटा है । अब राज्य कौन संभालेगा ?

भीष्म—माता जी ! सिंहासन एक क्षण भी रिक्त नहीं रह सकता । ज्योंही राजा चित्रांगद स्वर्ग सिधारे, विचित्र को सिंहासनासीन किया । राजा कौन हो—प्रश्न ही नहीं उठता ।

सत्य०—यह तुमने क्या किया ? रुग्ण बालक के निर्बल कन्धों पर इतने बड़े राज्य का भार डाल उसे

भी शीघ्र मारना चाहते हो कि तुम स्वयं शीघ्र राजा बनो ।

भीष्म—(आश्चर्य से) यह मैं क्या सुन रहा हूं ? अनुभव से ज्ञात हुआ है कि सौतेली माता कभी अपनी नहीं बन सकती । इतने त्याग और सेवा का यही फल है ?

सत्य०—कैसा त्याग और कैसी सेवा ? तुमने मेरा जीवन ही निर्मूल बना दिया । तुमने ही एक अर्धविकसित कली पर ओले बरसा कर उजाड़ दिया और इस पर त्याग और सेवा का ढोंग भी साथ जताते हो ?

भीष्म—पिताजी का स्वर्गवास छोटी आयु में नहीं हुआ ।

सत्य०—मैं तो जीवित मृत हो गई कि नहीं ?

भीष्म—आप विचारिए, इसमें मेरा क्या अपराध है ।

सत्य०—अपराध! यह अपराध ही नहीं प्रत्युत भ्रूण हत्या का महापराध है । यदि तुम अपनी पितृभक्ति का पाखंड दर्शाने न आते, मेरा विवाह महाराज से हो सकता था ? असम्भव !

भीष्म—जब आपके पिता की शर्त पूरी की गई, फिर आप रानी कैसे न बनतीं ।

सत्य०—पिताजी ने शर्त ही ऐसी रखी कि जिसे वह मान न सकते। इसलिए वह निराश होकर लौट आए। बुझी अग्नि को फिर फूंक दे देकर तुमने ही प्रदीप्त किया।

भीष्म—हाय माता! महापराध कर बैठा हूं। एक और प्राणी भी इसीलिए मेरी जान को रो रहा है। (चरणों में गिर कर) क्षमा करो।

(पटपरिवर्तन)

———

चतुर्थ-दृश्य

स्थान—काशी में स्वयंवर सभा । समय—प्रातः ।

(राजागण सभा में बैठें हैं । बाहर से भीष्म आते हैं)

भीष्म—काशी नरेश को उद्दंडता का दंड अवश्य देना है । उसने स्वयंवर में हस्तिनापुर के महाराज को क्यों नहीं बुलाया ?

(स्वयंवर सभा की ओर जाते हैं)

[सभा में शंख ध्वनि के साथ तीनों राजकुमारियों का प्रवेश]

काशी नरेश—(अपने पुत्र की ओर) क्यों कुमार ! सारे राजा लोग आगए ?

राजकुमार—हाँ, पिताजी ! आगए ।

काशी नरेश—(खड़े होकर) उपस्थित राज मंडल ! आप लोगों को विदित ही है कि आप लोग यहां क्यों

एकत्रित हुए हैं। मैं अपने भाषण से आपका अमूल्य समय नहीं खोना चाहता। अब आपके सामने मेरी सभी पुत्रियां क्रमशः आप में से अपनी इच्छानुसार वर वरण करेंगी। जो जिसके गले में जयमाला डालेगी, उसका उससे वैदिक रीति के अनुसार विवाह होगा। (भट्ट की ओर) चारण ! कुमारी अम्बा को सब राजगण से परिचित कराओ। (भट्ट द्वारा परिचित करने पर अम्बा शाल्वराज के गलेमें जयमाला डालना चाहती है। भीष्म प्रविष्ट होते हैं)

भीष्म—ठहरो राजकुमारी ! (काशी नरेश को) क्षमा करना। अनाहूत मुझे यहां आना पड़ा है। मैं हस्तिनापुर के महाराज विचित्रवीर्य के लिए दोनों छोटी कुमारियों को लेने आया हूं।

काशी नरेश—यह कैसे हो सकता है ? यह तो स्वयंवर है। राजकुमारियां अपनी इच्छानुसार वरण करेंगी। मैं इन्हें रोक नहीं सकता।

भीष्म—अच्छा, हम भी क्षत्रिय हैं। हमारी तलवार ही सब कुछ करा देती है। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार न करेंगे, मैं आपके देखते २ आपकी कन्याओं को ले भागूंगा।

काशी नरेश—(आग बबूला हो) तेरा यह दुस्साहस !

(सब राजा लोग तलवार निकाल लेते हैं । भीष्म सब के सामने तीनों राजकुमारियों को रथ में बैठाते हुए चारों ओर के आक्रमण को रोक सभा मण्डप को रक्तरञ्जित कर देता है । शाल्व घायल हो गिर पड़ता है । कुछ राजा लोग मारे जाते हैं और शेष भाग जाते हैं)

पंचम-दृश्य

स्थान--हस्तिनापुर का एक मार्ग (समय–सायंकाल)

(सौतेली माता से अनादृत हो भीष्म विचित्र के विवाह-विषयक विचार कर रहा है)

भीष्म—कर्तव्य पालन कितना कठिन है ? इस अथाह संसार समुद्र को पार करने के लिए कर्तव्य रूपी नौका कितनी छोटी है । इससे कौन पार उतर सकता है ? इस कमी की पूर्ति के निमित्त मैं गुरू जी की शिक्षा 'स्वार्थत्याग और निष्काम सेवा' पर आश्रित हूं किन्तु फल विपरीत होता है । पिताजी के सुख के लिए ब्रह्मचर्य लिया । एक ओर अम्बा रूठ गई, दूसरी ओर सौतेली माता हृदय चीर देती है । राजवैद्य और महामंत्री की सम्मति से विचित्रवीर्य को सुखी देखने के लिये उसे काशीनरेश की सुन्दरी कुमारियों से विवा-

हित किया कि माता जी इतनी क्रुद्ध हो गईं कि समझ नहीं आता क्या किया जाए।

(संध्या के अन्धकार में किसी स्त्री की परछांई देखकर)

भीष्म—देवी तुम कौन हो ?

स्त्री—हुं, अब पहचान भी नहीं रहे ? सुनो रे देवव्रत ! मैं हूं वह मूर्ख अबला, जिसने तुम्हारे जैसे विश्वासघाती, झूठे और कपटी पुरुष की बातों से पसीज तुम्हें प्रेम की भिक्षा दी।

भीष्म—हाँ हाँ, समझ गया, बहिन !

अम्बा—(बात काटकर) समझे क्या खाक, देवव्रत ! मैं यदि तुम्हारी बातों में आकर क्षण मात्र प्रेम से संचलित न होती——

भीष्म—(बीच में) क्षमा करो, देवी ! क्षमा। अतीत बातों के स्मरण का कोई लाभ नहीं। आप तो अपने पति शाल्वराज के पास गई थीं न ? लौट क्यों आईं ?

अम्बा—गई तो थी, गई क्यों नहीं। तुम्हारी कृपा से वहाँ से भी अपमानित हुई हूं। तुम्हें विचित्र के लिए जब मेरी दोनों छोटी बहिनों की आवश्यकता थी तो मुझे क्यों उठा ले गए थे ?

भीष्म—इसीलिए उसने अस्वीकार कर दिया ?

अम्बा—अस्वीकार ? उसने तो भरी सभा में मेरा इतना अपमान किया कि उसे मृत्यु दण्ड देकर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। उसने कहा, 'भीष्म की रखेल' यह सुनकर आग लग गई।

भीष्म—क्या ? उस पामर ने सती बहिन को यह कहने की धृष्टता की ?

अम्बा—इसीलिए इस कृपाण से उसे वहीं ठंडा कर दिया।

भीष्म—दुष्ट को उपयुक्त दण्ड मिला। मैंने आपको सुझाव दिया था कि उससे विवाह करना आत्मघात है।

अम्बा—चुप रहो, देवव्रत ! मैं तुमसे शान्ति प्राप्त करने नहीं आई। जीवन्मृत तो तुमने बनाया। अब तुम्हारी शांति की बातों से क्या मुझे शाँति मिलेगी ?

भीष्म—देवी ! क्षमा करो। गेहूं के साथ घुन की नांई आप निर्दोष पीसी गईं। मुझे इसका आभास ही नहीं हुआ था कि मेरे साथ आप भी बलि की बकरी बनेंगी।

अम्बा—क्षमा ? व्यर्थ, सर्वथा व्यर्थ। अब मैं इसका बदला लूँगी। तुमने मुझे नहीं पहिचाना। तुम जैसे मानव पशुओं ने स्त्रियों को अबला जान इतने बड़े अन्याय किये हैं कि वे उनकी हत्या करने में भी कमी नहीं करते। मैं मृदु नवतृण नहीं कि जिसे कोई भी पैरों से रौंद दे और वह न बोले। मैं वह शर भी नहीं जिससे केवल पक्षियों को मारा जाए। मुझे तो शतघ्नी, नहीं नहीं सहस्रघ्नी समझो, जिसके एक ही वार से सब समाप्त।

भीष्म—बहिन ! दण्ड भोगने को मैं सदा उद्यत हूं। यह लीजिए कृपाण, सिर उतार दें।

अम्बा—मुझे अब भी तुम बालबुद्धि कुमारी समझते हो ? मैं पवन नहीं, जिससे प्राणों की रक्षा हो। मैं वह भयानक अन्धेरी हूं, जिसमें स्वास लेना दुष्कर ही नहीं, असंभव है। मुझे तुम्हारे इच्छित मृत्यु के वर का ज्ञान है किन्तु मुझे तुम्हारा सत्यानाश कर देना है। बदला २—(कहती हुई शीघ्रता से भाग जाती है। भीष्म भी खिन्न चित्त चले जाते हैं)

षष्ठ-दृश्य

स्थान—अन्तःपुर । समय—मध्यान्ह काल ।

(विचित्र की मृत्यु पर उन्मादिनी सत्यवती)

सत्यवती—हाय ! प्रभो ! विचित्र को भी आपने सदा के लिए छीन लिया। पति के सुरपुर जाने पर मैं अनाथ और विधवा क्या हुई, समाज का कलङ्क हो गई। चित्राङ्गद की मृत्यु पर मेरी आंखें तेजोहीन हो गईं और संसार असार तथा शून्य हो गया। न जाने मेरी आत्मा का प्रकाश, नेत्रों की ज्योति और आन्तरिक बल कैसे हवा हो गये ? हा…हा…हा (अट्टहास्य कर) नहीं, कौन कहता है मेरा लाल चल बसा ? मैं उसकी पुकार अब भी सुन रही हूं। वह अभी जीवित है और स्वास्थ्य लाभ कर रहा है। मैं उसकी सन्तति देखूंगी। (दत्त चित्त हो) क्या कहा, तुम चले गए ?

सदा के लिए चले गए ? हाय, प्रभो ! इस वंश को नष्ट ही होना था क्या ? राज्य कौन संभालेगा ? कोई और राजा बनेगा ? (सहसा भीष्म को आता देख) अब सिंहासन पर किसे बैठाया है ?

भीष्म—इसीलिए सेवा में उपस्थित हुआ हूं महारानी जी ! अब आप स्वयं सिंहासन पर विराजमान हों और राज्य करें।

सत्यवती—पुत्र ! अब तुम्हीं इस टिमटिमाते दीपक में तेल डालो अन्यथा यह अब गया, अब गया। मेरी एक बात मानोगे ?

भीष्म—आज्ञा करो, माता जी !

सत्यवती—तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। न तुमने विवाह किया और न सिंहासन पर बैठे। अब मेरी प्रसन्नता के लिए तुम सिंहासन पर बैठो और अपने पितृवंश वृद्धि का कोई विचार करो।

भीष्म—माता जी ! आपके पिता ने अनजाने मेरे लिए यह मार्ग बन्द कर दिया। अतः कोई और उपाय सोचिए।

(व्यास जी का प्रवेश)

भीष्म--(चरण स्पर्श कर) गुरु जी ! मैं देवव्रत वन्दना करता हूं ।

सत्यवती---कौन हैं, भीष्म ?

भीष्म--माता जी ! भारत प्रसिद्ध महर्षि वेद व्यास--मेरे वन्दनीय गुरु महाराज ।

सत्यवती--महर्षि जी ! प्रणाम ।

व्यास---(सत्यवती के चरणों में गिर) माता जी ! सादर वंदे ।

(सत्यवती और भीष्म आश्चर्य चकित हो जाते हैं)

व्यास--माता जी घबराइए नहीं । ऋषि पराशर का पुत्र मैं व्यास आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं ।

सत्यवती--(पराशर का नाम सुन जड़भरत हो जाती है) आपकी माता का नाम ?

व्यास---जिसके चरण कमलों को मैं अश्रुजल से प्रक्षालन करता हूं महाराज शान्तनु की पत्नी श्रीमती सत्यवती मेरी माता है ।

सत्यवती---हाय ! कुलटा और कलंकिनी के चरणों में महर्षि व्यास पड़े हुए हैं ? मेरे पुत्र ! व्यास ! !

भीष्म---यह क्या भेद है ? मेरे आश्र्यंच की सीमा नहीं ?

व्यास—देवव्रत ! मौन रहो । पुत्र के समक्ष माता की महिमा पिता[1] से भी अधिक होती है । माता गुरु[2] की भी गुरु होती है । जाओ तुम क्षत्रिय हो, सशस्त्र होकर राज्य की रक्षा करो । शास्त्रों की बातों में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं ।

(एक ओर भीष्म और दूसरी ओर सत्यवती और व्यास जाते हैं)

(पट परिवर्तन)

---

१. गर्भ धारण पोषाभ्यां तातान्माता गरीयसी ।
२. माता गुरुणां गुरुः ।

तीसरा अंक

प्रथम-दृश्य

स्थान--परशुराम का आश्रम। समय--मध्यान्ह काल

(परशुराम के सामने हाथ बाँधे अम्बा खड़ी है।)

परशुराम—क्या देवव्रत भी मेरे गुरु आशुतोष भगवान् महा महादेव की भांति अजेय है ? परीक्षा लेनी चाहिए।

अम्बा—मैं तो उस छली और पाखण्डी का पाखण्ड खण्डन करना चाहती हूं, जिससे समाज को वास्तविक बात का ज्ञान हो।

परशुराम—तुम्हें इससे क्या लाभ ?

अम्बा—(चरण स्पर्श कर) आप सर्वज्ञ हैं, महाराज ! आपसे क्या छिपा है। मेरा जीवन उसने ही व्यर्थ गंवाया है। मैं बदले की इच्छुक हूं। सांसारिक मनुष्यों को यह मिथ्या दर्प है कि स्त्रियों के जीवन

से जैसे चाहें खेल खेलें। मैं इस दर्प को चूर्ण करना चाहती हूं।

परशुराम—नारी का अस्तित्व प्रेम में है। नर को प्रेम गंगा में पावन स्नान कराना नारी का काम है। इस बदले लेने की अग्नि में तेरा स्त्रीत्व भस्म हो जायगा।

अम्बा—क्षमा कीजिए महाराज! आप भी पुरुष हैं और चित्र के एक पहलू को देख रहे हैं। दूसरे पहलू को भी देखने का प्रयत्न करें।

परशुराम—आज तुम्हारा हृदय विक्षोभ और बदले की अन्धेरी में उड़ा जाता है। अस्तु, तुम मेरी शरण पड़ी हो, तुम्हारी रक्षा अवश्य करूंगा। तुम अब जाओ। देवव्रत को मैंने बुला भेजा है। वह आता ही होगा।

(एक ओर से अम्बा जाती है दूसरी ओर से भीष्म प्रविष्ट होता है)

भीष्म—गुरु जी! मैं देवव्रत दण्डवत् प्रणाम करता हूं।

परशुराम—कल्याण हो।

भीष्म—मेरे सौभाग्य से आज गुरु महराज ने इस अकिंचन दास को स्मरण किया है।

परशुराम—हाँ, देवव्रत ! एक महत्वपूर्ण कार्य के लिए तुम्हें बुलाया है ।

भीष्म—आज्ञा कीजिये, महाराज !

परशुराम—देवव्रत ! तुम विवाह क्यों नहीं करते ?

भीष्म—विवश हूँ, महाराज !

परशुराम—कैसे ? विवशता की क्या बात है ?

भीष्म—आप त्रिकालज्ञ हैं, महाराज ! पितृ सुख के लिए मैंने सर्वसम्मुख यह प्रतिज्ञा की थी कि न मैं विवाह करूंगा और न मैं सिंहासन पर बैठूंगा ।

परशुराम—काशी नरेश की कन्या का जीवन नष्ट करने का तुम्हें क्या अधिकार था ?

भीष्म—भूल हुई गुरु जी ! क्षमा कीजिये ।

परशुराम—कभी नहीं । दण्ड भोगना पड़ेगा ।

भीष्म—प्रस्तुत हूँ ।

परशुराम—सोच समझ लो ।

भीष्म—अपराधी दण्ड भोगनें से पवित्र हो जाता है ।

(अपराधी की नाँई घुटना टेक कर बैठ जाता है)

परशुराम—नहीं, भीष्म ! शारीरिक पाप का दण्ड शारीरिक और मानसिक पाप का दण्ड मानसिक होता है ।

भीष्म—वह तो भोग ही रहा हूं।

परशुराम—ऐसे महापराध के लिए इतना पर्याप्त नहीं।

भीष्म—आप प्रभु हैं आदेश दें।

परशुराम—अम्बा से विवाह कर लो।

भीष्म—दुष्कर ही नहीं, असम्भव।

परशुराम—(रक्त नेत्र हो) असम्भव? किससे बात कर रहे हो?

भीष्म—अपने समर्थ गुरुमहाराज के साथ।

परशुराम—फिर आज्ञा और दण्ड दोनों का उल्लंघन?

भीष्म—धर्म संकट से विवश हूँ।

परशुराम—अच्छा खड्ग उठाओ। मेरे परशु का भी ज़ङ्ग उतरेगा।

भीष्म—खड्ग की आवश्यकता नहीं। सिर की भेंट देता हूँ।

(नतग्रीव हो जाता है।)

परशुराम—निश्शस्त्र पर शस्त्र उठाना पाप है।

भीष्म—युद्ध मैं नहीं करूंगा। फिर अपने आचार्य से?

परशुराम—भयभीत हो गया? क्षत्रिय होकर?

भीष्म—यदि सामने कोई और होता, आटे दाल का भाव बतला देता।

परशुराम--मुझसे शस्त्र शिक्षा ले व्यर्थ क्यों गंवाता है ?

भीष्म--गुरुदेव ! अनहोनी कैसे हो। गुरु-शिष्य का भी कोई युद्ध होता है ?

परशुराम--बस, देवव्रत ! यह मेरी आज्ञा है, माननी पड़ेगी।

(दोनों जूझ जाते हैं। घमासान युद्ध होता है। अन्त में भीष्म परशुराम के परशु को अपने एक वार से दूर फेंक देता है। युद्ध समाप्त हो जाता है।)

परशुराम--वाह ! वाह !! देवव्रत ! वाह !! मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम निस्सन्देह वीरता, आत्मत्याग और बलिदान में अजेय हो। तुम जैसे शिष्यों से मैं भी धन्य हूं। जाओ तुम्हारी प्रतिज्ञा अटल रहे।

——

द्वितीय-दृश्य

स्थान--कैलाश पर्वत का शिखर   समय--उषाकाल

(शिखर पर अम्बा महादेव की भक्ति में लीन है)

महादेव--(प्रकट होकर) तुम कौन हो ? क्यों तपस्या कर रही हो ?

अम्बा--(आंखें खोलकर) महाराज आप कौन ?

महादेव--एक यात्री। तुम इस कमल कोमल देह को क्यों सताती हो ? तुम्हें क्या कष्ट है ?

अम्बा--यात्री जी महाराज ! जाइए, मेरी समाधि व्यर्थ में भंग की है आपने।

महादेव--यदि तुम्हें कष्ट होता हैं, देवी ! मैं चला जाता हूँ। मैंने सोचा था संभव है तेरी सहायता कर सकूं।

अम्बा--मेरा कष्ट निवारण करना मानवीय शक्ति से

परे है, अतः मैं शङ्कर बाबा की शरण पड़ी हूं ।

महादेव—फिर भी बतलाने में क्या हानि है ?

अम्बा—न, महाराज ! धन्यवाद । भगवान् शङ्कर ही मुझे शांति प्रदान कर सकते हैं ।

महादेव—मुझे ही शंकर जान ।

अम्बा—कोई प्रमाण ?

(महादेव जटाओं में बंधे सर्प और नीलकण्ठ दिखाते हैं)

अम्बा—(उठकर चरणों में गिरती है) क्षमा कीजिए भगवन् !

महादेव—अपना नाम तथा कष्ट बताओ ।

अम्बा— काशी नरेश की कन्या अम्बा आपकी शरण पड़ी है ।

महादेव—तपस्या से अपना सुन्दर देह क्यों नष्ट कर रही हो ?

अम्बा—एक वर का प्रसाद चाहिए । अनुग्रह करें ।

महादेव—क्या चाहती हो ?

अम्बा—भीष्म की मृत्यु और वह भी मेरे हाथों ।

महादेव—यह भी कोई वर है ?

अम्बा—आप तो अर्धनारीश्वर हैं, भगवन्। आप ही यदि हमारे अधिकारों की रक्षा न करें, तो कौन करे ? पुरुष समाज बड़ा अभिमानी हो गया है। अपने जैसा किसी को समझता ही नहीं। उसके इस दर्प को चूर्ण करना चाहती हूं और स्त्रियों की मान मर्यादा को फिर से बनाना चाहती हूं।

महादेव—पुत्री ! यह स्त्री धर्म नहीं। स्त्री, तपस्या साधना और बलिदान से पुरुषों का घमंड चूर २ करती है न कि बदले की अग्नि में जलाकर।

अम्बा—सच है दयालु आशुतोष ! माता दुर्गा ने हमें यह भी शिक्षा दी है कि जब मनुष्य अत्याचारों की अति कर दे हमें अबला से सबला ही नहीं प्रत्युत रणचण्डी बनना चाहिए।

महादेव—यह दुस्साहस है। तुम जिन साधनों से अधिकार मांगना चाहती हो, उनसे स्त्री, स्त्री नहीं रह सकती। मेरा सिद्धान्त और है।

अम्बा—क्षमा कीजिये, भगव्रन् ! मुझे तो यही और एक मात्र यही वर चाहिए।

महादेव—यह वर नहीं मिल सकता।

अम्बा—आपको देना ही पड़ेगा। मेरी प्रतिज्ञा अटल है।

महादेव—यदि न दूँ, तो क्या करोगी ?

अम्बा—पुनः तपस्या करूंगी। आशुतोष भगवान् का आसन डोल जायगा। भगवान अपने नियमों का पालन अवश्य करेंगे। वह मनुष्य की भांति स्वैरी नहीं।

महादेव—पुत्री ! मैं प्रसन्न हूँ किन्तु यह वर न दे सकूँगा। भीष्म 'अभिलषित मृत्यु' है।

अम्बा—आप उसे प्रेरणा दें कि वह अपनी मृत्यु का स्वयं आह्वान करे।

महादेव—पुत्री ! तुम प्रेमलोक से निरादृत हुई हो। मैं एक ऐसे पुरुष की रचना कर दूँ, जो तुम्हें प्रसन्न रखे।

अम्बा—नहीं, भूतनाथ जी ! मुझे रूप, प्रेम, धन आदि कुछ नहीं चाहिए। चाहती हूँ केवल भीष्म की मृत्यु। कृपा करोगे या नहीं ?

महादेव—एक शर्त पर।

अम्बा—कौन सी ?

महादेव—तुमने कहा कि मैं मनुष्यों की नांई अपना नियम भंग नहीं करता। मैं नारी धर्म में हिंसा की भावना कैसे लाऊं। अतः तुम्हें स्त्री पुरुष

का एक रूप धारण करना पड़ेगा। वह भी अगले जन्म में।

अम्बा--कैसे ?

महादेव--अगले जन्म में तू राजा द्रुपद की पुत्री होगी किन्तु मेरे प्रसाद से पुरुष बन बदले की अग्नि बुझा सकेगी।

अम्बा--धन्यवाद, बड़ी कृपा।

(महादेव 'तथास्तु' कह कर अन्तर्धान हो जाते हैं।)
(अम्बा प्रसन्न हो शिखर से उतरती है।)

अम्बा--संसार अब अबला के बल को पहचानेगा, मुझे भी शान्ति मिलेगी।

(प्रस्थान)

—— ——

तृतीय-दृश्य

स्थान—कौरव सभा   समय—प्रभात ।

(सिंहासन पर राजा दुर्योधन बड़ी सजधज से बैठे हैं । दुश्शासन आदि भाई सामन्त, भीष्म, द्रोण, शकुनि आदि अपने अपने स्थान पर बैठे हैं । यदुपति श्रीकृष्ण अपने आसन पर खड़े होकर)

श्रीकृष्ण—राजन् ! मैं आपके शूरवीर भाई पाण्डवों की ओर से दूत बन कर आया हूं ।

दुर्योधन—क्या सन्देश लाये हो, गोपाल !

श्रीकृष्ण—उन्होंने आपकी सारी बातें बिना किसी ननुनच के मानीं और सारी विपदाओं का सहर्ष सामना किया । अब आप भी उनका भाग शर्त के अनुसार उन्हें लौटा दें ।

दुर्योधन—(ठट्ठा मार कर) आप भोले हैं, गोपीनाथ ! वे अपना भाग हार चुके हैं । अब उनका कौन सा भाग ? विजित द्रौपदी को लौटा देने में भी हमारी कृपा थी ।

श्रीकृष्ण—तदनुसार बारह बर्ष बनवास और एक वर्ष गुप्तवास में बिताया । अब व्यर्थ में विवाद नहीं करना चाहिए ।

दुर्योधन—यदि वे राज्य चाहते हैं, एक शर्त पर मिलेगा ।

कृष्ण—कौनसी ?

दुर्योधन—संग्राम और केवल संग्राम ।

श्रीकृष्ण—राजन् अब आप युवराज नहीं रहे । लोकपाल बनने से व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष भुला न्याय कीजिये । न्यायानुसार पाण्डव राज्य के अधिकारी हैं ।

दुर्योधन—मैं कब निषेध करता हूँ । वे शूर हैं, युद्ध से लें ।

श्रीकृष्ण—भाई-भाई का युद्ध अच्छा नहीं होता । युद्ध रोकने के लिए उन्होंने मुझे सन्धिदूत बनाकर भेजा है ।

दुर्योधन—मिथ्या और पाखण्ड । भीमसेन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह मुझे गदा से घायल करेगा ।

श्रीकृष्ण—राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं होता, मैं विवश हूँ । राज्य नहीं देना चाहते न दें । आप केवल उनके रहने के लिए केवल पाँच गाँव ही दे दें । मैं उन्हें मना लूंगा ।

दुर्योधन—नहीं कृष्ण ! यहां गोपियाँ नहीं कि आपकी बंशी की तान से मस्त हो जाएंगी । मैं आपकी चतुराई भली भांति जानता हूँ । पांच गांव तो दूर रहे, मैं सुई की नोक जितनी भी पृथ्वी युद्ध के बिना न दूंगा ।

श्रीकृष्ण—(शकुनि को इंगित करते देख) दुर्योधन ! तुम स्वयं बुरे नहीं । शकुनि जैसे कुमंत्री तुम्हारा सत्यानाश कराने पर उतारू है । राजा को न्यायशील और उदार होना चाहिए । पाण्डवों को देखो, आपके वैर को भूला कर द्वैतवन में आपको शत्रुओं की कैद से छुड़ाया ।

दुर्योधन—वासुदेव ! यहाँ आपकी मनमोहक बातों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता । मैं इतना बालबुद्धि नहीं कि अपना हानि-लाभ ही न समझूं ।

श्रीकृष्ण—फिर यह आपका अन्तिम निर्णय है ? सोच लो पाण्डव वीर हैं । अकेले अर्जुन ने ही आप

सबको विराट नगरी में भूशायी किया था। ओ विचारहीन तरुण ! अपना गृहदाह स्वयं न करो।

भीष्म--पुत्र दुर्योधन ! श्रीकृष्ण ठीक कहते हैं। युद्ध में दोनों पक्षों की हानि है। विजय धर्म की होगी। हठ न करो, पाण्डवों का भाग उन्हें दे दो।

दुर्योधन--पितामह ! यह नहीं हो सकता।

भीष्म--जिस कर्ण के आश्रय पर तुम युद्ध पर उतारू हो, क्या वह विराट नगरी में नहीं था।

दुर्योधन--पितामह बड़ों से वाद विवाद मैं न करूंगा।

द्रोणाचार्य--यह वह मरूभूमि है, जहाँ परिश्रम व्यर्थ और बीज नष्ट हो जाता है।

श्रीकृष्ण--अस्तु, दुर्योधन ! तुम्हें यदि सर्वनाश अभीष्ट है, कराओ। मैं जाता हूं।

दुर्योधन--हमें कृपया 'स्वागत' करने का सौभाग्य तों प्रदान करें।

शकुनि--सत्कार की सामग्री प्रस्तुत है, केवल आरती करने मात्र का विलम्ब है।

श्रीकृष्ण--धन्यवाद कूटनीतिज्ञ ! यदि तुम न्याय पक्ष को अपनाते, दुर्योधन नष्ट न होता।

शकुनि—अपने अपने भाग्य हैं। निराश क्यों होते हो, हमारा अतिथ्य तो स्वीकार करते जाओ।

श्रीकृष्ण—जो कूटनीति आप करना चाहते हैं, मुझे उसका ज्ञान है। आप समझ लें कि वह सब निष्फल है।

दुर्योधन—बांधो, बांधो, दुश्शाशन! बांध लों।

श्रीकृष्ण—(अट्टहास्य से) मुझे बांधने का सामर्थ्य किस में है? इन शृंखलाओं से मैं कभी नहीं बंधता, मूर्खो! मेरे बांधने का उपाय विदुर से पूछो।

दुर्योधन—देख क्या रहे हो। (सब श्रीकृष्ण को बांधने को घेरा डालते हैं किंतु विश्वव्यापक श्रीकृष्ण की विराट मूर्ति को देख थर-थर काँपते हैं। भगवान् हंसते २ अंतर्धान हो जाते हैं। सभा में आश्चर्य तथा शान्ति व्याप्त हो जाती है। सब लोग भयभीत होकर धीरे २ चले जाते हैं।)

चतुर्थ-दृश्य

स्थान--कुरुक्षेत्र का रणक्षेत्र। समय--प्रात: आठ बजे

(दोनों सेनाएं एक दूसरे के सामने व्यूह वना खड़ी हैं। कर ठीक दोनों के मध्य श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ हांक लाते हैं।)

अर्जुन--(दोनों ओर भाई, बन्धु, गुरु, पितामह तथा अन्य सम्बन्धियों को एक दूसरे को मरने मारने तथा सर्वस्व नाश करने की प्रत्यक्ष मूर्ति देख कांपते हुए) भाई कृष्ण! मेरा रथ शीघ्र लौटाओ। दोनों ओर से अपने सम्बन्धियों को जूँझता देख मेरा हृदय काँप उठा है। अँग अँग टूटने लगा है। लड़ना तो क्या मैं यहां ठहर ही नहीं सकता। मेरा दम घुटता है। (इतना कहते हुए उसके हाथ से गाण्डीव छूट रथ पर गिर पड़ता है।)

श्रीकृष्ण--धनंजय! तुम में यह कायरता कैसे? इन व्यर्थ और अशोचनीय घटनाओं के लिए शोक कर रहे हो।

अर्जुन--भीष्म, द्रोण आदि गुरुओं पर शस्त्र कैसे चलाऊँ ? इनको मारने के बदले भिक्षा मांगकर खा लेना अच्छा है।

श्रीकृष्ण--मारना ? किसको मारना ? तेरा उपनिषदों का ज्ञान कहां लुप्त हो गया है कि आत्मा अमर है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा है कि यह देह वस्त्रों की नांई पुराने या मलिन होने पर देही द्वारा बदलने योग्य है। इसी ज्ञान से वीर क्षत्रिय मरने मारने को तत्पर रहते हैं।

अर्जुन--मूर्ख और अज्ञानी होने से शास्त्र वचन सुनकर भी समझ नहीं सकता कि किसी के मर जाने पर उसे जीवित कैसे कहा जावे ?

श्रीकृष्ण--(हंस कर) अर्जुन ! आत्मा को कौन मार सकता है ? यह न कभी काटी जा सकती है, न जलाई जा सकती है। यह कभी किसी प्रकार से नष्ट नहीं हो सकती। यदि मान भी लिया जाए कि आत्मा मर जाती है फिर भी शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि विश्व में जो वस्तु बनी है वह किसी न किसी समय नष्ट अवश्य होती है।

अर्जुन--यह ठीक है, महाराज ! किन्तु यह निश्चय

कहां है कि विजय हमारी होगी। फिर व्यर्थ में रक्तस्राव कहां उपयुक्त है ?

श्रीकृष्ण--मनुष्य का अधिकार कर्म में है न कि फल में। सोच विचार कर किया हुआ काम तो कभी निराशा जनक होता नहीं। हार से भी क्या डर। धर्म युद्ध में काम आने पर मनुष्य स्वर्ग को जाता है। जीतने पर राज्य भोगता है। दोनों दशाओं में लाभ ही लाभ।

अर्जुन--मुझे आप पर पूर्ण निश्चय है किन्तु इस कर्म-शास्त्र का ज्ञान नहीं हुआ। कर्म तो चोरी तथा अन्य बुरे कर्म भी हैं। यह कैसे ज्ञान हो कि अमुक कर्म का फल अच्छा और अमुक कर्म का फल बुरा है।

श्रीकृष्ण--यह तो बड़ी सरल बात है। दुर्जनों की तमोगुणी ज्ञानशक्ति तथा रजोगुणी कर्म, काम और क्रोध से ऐसे मन्द पड़ जाते हैं जैसे चिकनाहट से दर्पण। इसलिए आप काम आदि शत्रुओं को जीतें और मोह माया के कर्दम में न फँसे। यह समय बहुत वादविवाद का नहीं। देखो युद्ध प्रारम्भ हो गया। भीष्म की शरवर्षा से तुम्हारी

सारी सेना पीछे भाग रही है। शीघ्र गाण्डीव उठाओ और जूझ जाओ।

अर्जुन—(प्रभावित होकर) बहुत अच्छा, महाराज। अब मैं समझ गया। आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूंगा। (भीष्म के संहार कार्य से भागते हुए सैनिकों को देख अर्जुन क्रुद्ध हो गाण्डीव की टंकार करता है। अवसर पाते ही श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ भीष्म के रथ के ठीक सन्मुख लाते हैं। भयानक युद्ध होता है।)

———

पंचम-दृश्य

स्थान—कुरुक्षेत्र में पांडवों का शिविर। समय—रात्रि

(श्रीकृष्ण और पाण्डव विमर्श कर रहे हैं)

युधिष्ठिर—अब क्या किया जाय, वासुदेव !

श्रीकृष्ण—युद्ध के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है ?

युधिष्ठिर—नौ दिन में ही हमारे अनेकों रथी और आधी सेना समाप्त हो गई है।

श्रीकृष्ण—और क्या हो ?

युधिष्ठिर—यदि यही दशा रही, विजय संदिग्ध है।

श्रीकृष्ण—मुझे शस्त्र उठाना नहीं। जो कुछ करना है आपको स्वयं करना है।

युधिष्ठिर—आपके बिना हमारा एक क्षण भी कठिन हो जाएगा। सारथी के पद से आप हट नहीं सकते, नारायण।

श्रीकृष्ण--क्यों भीम ! तेरी गदा पर ज़ंग कैसे लग गया है ? अर्जुन ! विराट नगरी में आपने क्षणों में सब को कैसे पछाड़ा ?

भीम--यह हास्य का अवसर नहीं है, कृष्ण ! आप तो लोगों को उपदेश देते रहते हैं।

श्रीकृष्ण--मैं यह कहने को था कि मुझे अब आज्ञा दें, मैं द्वारिका जाऊँ।

भीम--प्रासाद पर चढ़ाकर नीचे से सीढ़ी खींच लेना इसे ही कहते हैं। हमारी पीठ ठोकते रहे अब ठीक अवसर पर भागना चाहते हैं।

श्रीकृष्ण--धर्मराज ! मैं हास्य नहीं करता। अर्जुन सामने है। यह यदि चित्त से युद्ध करे तो एक भीष्म नहीं सैंकड़ों भीष्म भी नहीं ठहर सकते।

युधिष्ठिर--यह सच है, अर्जुन !

अर्जुन--मैं विवश हूं, दादा ! इनके उपदेश से प्रभावित हो युद्ध तो कर रहा हूं किन्तु अपने सम्बन्धियों को मार नहीं सकता।

युधिष्ठिर--युद्ध फिर बन्द कर दो। सेनाओं को पीछे लौटने का आदेश दो, सहदेव ! व्यर्थ में मानव-रक्त स्राव क्यों ?

अर्जुन--एक और कारण भी है, दादा !

युधिष्ठिर--वह कौनसा ?

अर्जुन--पितामह अभीष्ट मृत्यु हैं । मैं उन्हें कैसे मार सकता हूँ ?

युधिष्ठिर--(सविनय) इसका भी कोई उपाय बताओ, केशव !

श्रीकृष्ण--उपाय का क्या लाभ, जब कोई सामना करने वाला नहीं ।

युधिष्ठिर--क्यों अर्जुन ?

श्रीकृष्ण--यह बात है सखा ? लो कल ही यदि भीष्म को धराशायी न किया, गाण्डीव न पकड़ूंगा ।

श्रीकृष्ण--कल विजय भी अवश्य समझो, धर्मराज ! अब किसी की सामर्थ्य नहीं कि अर्जुन की प्रतिज्ञा अन्यथा सिद्ध करे । सहदेव ! तुम धर्मराज का आदेश सेनाओं को जाकर बताओ । धर्मराज ! आप ठहरें, अन्य सब चले जावें ।

(सारे चले जाते हैं । श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर रुक जाते हैं)

श्रीकृष्ण--धर्मराज ! आप पितामह के पास जाकर कहें कि हम संग्राम छोड़ बनों को जा रहे हैं। आप से आज्ञा लेने आये हैं ।

युधिष्ठिर--असत्य, केशव ! मुझसे ? फिर पितामह के साथ ?

श्रीकृष्ण—इसमें असत्य क्या है ? अभी आपने स्वयं सहदेव को यह नहीं कहा ?

युधिष्टिर—किन्तु अंतिम निर्णय तो डट कर युद्ध करने का हुआ है न ?

श्रीकृष्ण—इसे असत्य नहीं कहते । यह धर्म साधन है ।

युधिष्ठिर—असत्य तो त्रिलोकी के राज्य के लिये भी नहीं बोलूँगा ।

श्रीकृष्ण—तो विजय भी स्वप्न समझें ।

युधिष्ठिर—अर्जुन की प्रतिज्ञा भी असत्य होगी ?

श्रीकृष्ण—भोले धर्मराज ! यह तो उसे उत्तेजित करने की बातें थीं । भीष्म की 'अभीष्ट मृत्यु' तो समाप्त नहीं हुई ।

युधिष्ठिर—फिर ?

श्रीकृष्ण—फिर क्या । जाओ बनों में । संग्राम समाप्त करो, मैं भी द्वारिका जाऊं ।

युधिष्ठिर—यह कैसे हो सकता है भगवन् ! आप कोई ऐसा उपाय बताएं कि सत्य और धर्मपूर्वक पितामह को भूशायी कर दें ।

श्रीकृष्ण—कौन कहता है असत्य व्यवहार करो । मैं यही मंत्रणा देता हूं कि आप लोग बनों को

जाएं। अच्छा, मुझे कुछ और काम भी करने हैं। नमस्कार। (प्रस्थान)

(युधिष्ठिर चिन्तामग्न हो जाते हैं)

(पट परिवर्तन)

(पर्दा उठते ही कुन्ती श्रीकृष्ण की मन्त्रणा से भीष्म के शिविर में)

कुन्ती---पितामह जी ! पाण्डु पत्नी कुन्ती वन्दना करती है।

भीष्म---प्रसन्न हो, कुन्ती ! इस समय कैसे आई हो ?

कुन्ती---प्रसन्न कैसे हो सकती हूं यदि भाग्य में वनवास बदा है।

भीष्म---क्यों, क्या बात है ?

कुन्ती---आज युधिष्ठिर नें सेनाओं को लौट आने का आदेश दे दिया है और आप वनगमन की तैयारी कर रहे हैं।

भीष्म---किसलिए ?

कुन्ती---विजय की आशा न होने से सभी निरुत्साह और निराश हो गए हैं।

भीष्म---तेरे सभी पुत्र वीर हैं। अर्जुन के हाथों की सफ़ाई देख बड़ी प्रसन्नता होती है।

कुन्ती---आप के सामनें सहस्रों अर्जुन कुछ नहीं कर

सकते। नौ दिन में उनकी आधी सेना समाप्त हो गई। विजय कैसे हो?

भीष्म---नहीं, कुन्ती! तुम्हारे पुत्र धर्म के पक्ष में हैं। इसी लिए भगवान् श्रीकृष्ण उनकी ओर हैं। वे परास्त नहीं हो सकते।

कुन्ती---आप को स्वयं भगवान् भी नहीं मार सकते? आप ठहरे 'इच्छित मृत्यु'।

भीष्म---(ठण्डा सांस ले स्वयमेव) हाय! मेरे जैसे अनियमित मनुष्य का विश्व में क्या मूल्य है। मेरे देखते देखते मित्र, बन्धु, पुत्र और पौत्र सारे बड़े छोटे काल कवलित हो रहे हैं। मैं अकेला राजकुमारों और सौतेली माता की हृदय विदारक बातें सुनने को जीवित हूँ। अब जीने की क्या आवश्यकता है? कोई भोग भोगना शेष नहीं रहा। हे भगवान्! अब इस दास को अपने चरणों में स्थान दो। (कुछ विचार कर प्रकाश में) अच्छा कुन्ती! आत्मघात मैं नहीं करूंगा किन्तु तुम्हारे पुत्रों की विजय कामना करता हूं।

कुन्ती---वह कैसे?

भीष्म---तुम मेरी ओर से युधिष्ठिर को बन जाने से रोक दो। अर्जुन से कहना कि कल मेरे साथ युद्ध

करते हुए अपने आगे शिखण्डिनी को साथ लाए। अवश्य विजय होगी।

कुन्ती---जो आज्ञा।

भीष्म---अपनी मृत्यु की इच्छा करना यद्यपि पाप है किन्तु धर्म की पराजय और पाप की विजय करना महापाप है। कौरवों के अन्त के लिए बहुत कुछ हो गया। अब इस जीवन से कुछ काम नहीं। हे भगवान्! इस पापी को अब अपने चरणों में अवश्य बुलायें। (समाधिस्थ हो जाते हैं)

षष्ठ-दृश्य

स्थान---कुरुक्षेत्र । समय---सायंकाल

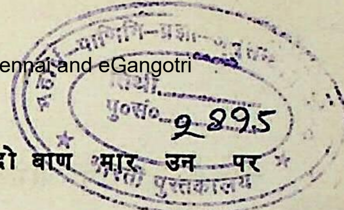
(भीष्म लड़ते लड़ते शर विद्ध हो गिर पड़ते हैं । उनके गिरते ही युद्ध बन्द हो जाता है । चारों ओर से उन्हें कौरव, पांडव, विदुर, द्रोण, कृप और कर्ण शोकमग्न हो घेर लेते हैं)

भीष्म---मेरा सिर नीचे को लटक रहा है । दुर्योधन ! कोई तकिया तो देना । (दुर्योधन एक मृदु मखमली तकिया रखता है ।)

भीष्म---यह कैसा नुकीला तकिया रखा है ? (हंसते हैं) अर्जुन है ?

अर्जुन---(अश्रुपूर्ण आंखों से) आज्ञा कीजिये पितामह ! मेरे ही क्रूर कर्मों से आप की यह दशा हुई है न ?

भीष्म---पुत्र ? पश्चाताप न करो । तुमसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। तुमने मेरे लिये यह बड़ी सुन्दर शय्या बनाई है । अब इसके उपयुक्त एक तकिया भी लगा दो न ?



(लज्जित होकर अर्जुन पृथ्वी में दो बाण मार उन पर उनका सिर रख देता है।)

भीष्म---यह तकिया शय्या के अनुकूल है। तुम्हें धन्यवाद तो नहीं देता किन्तु विजय का आशीर्वाद देता हूँ।

अर्जुन---(अश्रु वर्षा करता हुआ) पितामह ! थोड़ा समय चरणों में बैठने की आज्ञा चाहता हूँ। मेरे जैसा कोई नीच होगा ? मैं अपने ब्रह्मचारी पितामह का हत्यारा हूँ।

भीष्म---नहीं, बेटा ! ऐसा मत कह। तुमने अपना धर्मपालन किया है। यदि तुम ऐसा न करते, नरक के अधिकारी होते। क्षत्रिय का धर्म यही है (अधर शुष्क हो जाते हैं) दुर्योधन ! पानी।

दुर्योधन---(सुवर्ण पात्र में जल भर आगे ला) पीजिये, पितामह।

भीष्म---तू तो अबोध है। अर्जुन ! जल पिला। (अर्जुन गाण्डीव से एक बाण पृथ्वी में मारता है। पृथ्वी से गंगा की निर्मल जलधारा फव्वारे की नांई भीष्म के मुख में पड़ती है।)

भीष्म---(जल पीकर) कितना शीतल जल है। बस, पुत्र ! सुखी रहो। (अर्जुन पृथ्वी से बाण निकाल लेता है। जल धारा बन्द हो जाती है।)

भीष्म---अन्तिम समय एक बात कहता हूं, मानेगा, दुर्योधन ?

दुर्योधन---आज्ञा करें।

भीष्म---पुत्र ! वैर-भाव छोड़ युद्ध समाप्त कर दो।

दुर्योधन---अब ? आपकी बलि देख कर ? असम्भव।

भीष्म---पुत्र ! मैं देख रहा हूँ कि युद्ध में कौरव कुल नष्ट हो जायगा।

द्रोण---दुर्योधन ! पितामह ठीक कहते हैं। कौरव कुलभूषण भीष्म के तप और त्याग से यह वंश प्रसिद्ध और फलित हुआ। अब यदि इनकी बलि से इनकी मर्यादा पालन हो जाए, बड़ा अच्छा है। युद्ध बन्द कर दो।

कृपाचार्य---राजन् ! हठ अच्छा नहीं। पितामह ने तुम पर ही नहीं समूचे वंश पर उपकार किया है। आजन्म ब्रह्मचारी रह कर अन्त में उसी कुल के लिए देह त्याग रहे हैं। तुम उनकी एक इच्छा वह भी तुम्हारे हित की, पूर्ण नहीं करते। आश्चर्य है।

दुर्योधन---अब तो पितामह की मृत्यु का बदला लूँगा।

भीष्म---शोक है, दुर्योधन ! तुम अपनी लाभ हानि

भी नहीं समझते। अस्तु, जाओ रात्रि हो गई है। आराम करो।

दुर्योधन---पितामह। आपको अकेला छोड़ कर ?

भीष्म---हां दुर्योधन ! मैं उत्तरायन सूर्य की प्रतीक्षा करूंगा, तब तक यहीं ऐसा पड़ा रहूँगा।

(सब का प्रस्थान)

(पटपरिवर्तन)

